दुष्यन्त की ग़ज़लों में सत्ता और राजनीति

डॉ. वीरेन्द्र सिंह

अतिथि प्रवक्ता

स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मो. 9268380094

ईमेल : virendersangwan2@gmail.com

प्रत्येक युग का साहित्य अपने समय के साथ संवाद करता हुआ नजर आता है। इस संवाद की प्रक्रिया में वह सहमति और असहमति की मुद्राएँ धारणा करता है। जो साहित्यकार अपने समाज, राजनीति और अर्थतंत्र से असन्तुष्ट होते हैं वे उस पर बार–बार सवाल खड़े करते हैं और उन सवालों के उत्तर ना पाने की स्थिति में एक प्रकार की बेचैनी का अनुभव करते हैं। दुष्यन्त कुमार हिन्दी के ऐसे ही कवि हैं। 1 सितंबर 1933 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर में जन्में दुष्यन्त कुमार ने महज 42 की कुल उम्र में हिन्दी कविता को नये तेवर दिए। दुष्यन्त कुमार का 'साये में धूप' गज़ल संग्रह उनकी रचनाधर्मिता का हिमालय है। सामान्यतः ग़ज़ल को प्रेम, इश्क और रोमांस का पर्याय समझा जाता है। डॉ. सादिक़ा असलम नवाब के शब्दों में ''ग़ज़ल शब्द अरबी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अर्थ शब्दकोश में किसी सुन्दर स्त्री से बातचीत करना है। पारिभाषिक शब्दावली में ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ नारियों से प्रेम की बातें करना लिखा है।''[1]

दुष्यन्त ने ग़ज़ल की इस पारम्परिक और रूढ़िवादी छवि को तोड़ा और उसमें सत्ता, समाज, राजनीति और व्यक्ति की बेचैनी और पीड़ा को स्थान दिया।

---

1 साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल : शिल्प और संवेदना, डॉ. सादिका असलम, पृ. 22.

दुष्यन्त ने कुल 11 रचनाओं का सृजन किया। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – सूर्य का स्वावगत 1957, आवाजों के घेरे 1963, जलते हुए वन का बसंत 1970, साये में धूप, एक कण्ठ विषपायी 1984, छोटे–छोटे सवाल 1984 और आँगन में एक वृक्ष इत्यादि।

सन् 1950 के आसपास दुष्यन्त कुमार ने कविता लिखनी शुरू की। यह समय नयी कविता आन्दोलन का भी समय है। लेकिन नये कवियों की व्यक्ति केन्द्रित मुद्रा से दुष्यन्त को असन्तोष था। नयी कविता वस्तुस्थिति का सामान्यीकरण कर देती है। वह शब्दों की आड़ में यथार्थ को छुपा लेती थी। दुष्यन्त कुमार के शब्दों में ''मैं आज की कविता से ऊब चुका हूँ, कितनी कट चुकी है यह ज़िन्दगी और पाठकों से सब लोग जैसे एक छोटे से दायरे में घूम रहे हैं। यह कविता कितनी बासी उबाऊ और अपठनीय है। ऐसे में मैं नई ज़मीन तोड़ने की कोशिश कर रहा हूँ।''[2]

दुष्यन्त कुमार नई कविता के सन्दर्भ ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि नयी कविता में अभिव्यक्त अकेलापन, संत्रास, निराशा और घुटन सभी पश्चिम से आयातित अवधारणाएँ हैं। दुष्यन्त ने यथार्थ पर जो दर्शन और अवधारणाओं का पर्दा पड़ा हुआ था उसको हटाकर आम जनता की जुबान में ग़ज़लों की रचना की। दुष्यन्त कुमार के मतानुसार ''मैंने अपनी तकलीफ़ को उस शहीद तकलीफ को जिससे सीना फटने लगता है, ज्यादा से ज्यादा सच्चाई को समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल कही है।''[3]

दुष्यन्त की कविता अपने समय से आगे की कविता है। उनकी कविता में जो डर, असुरक्षा, निराशा और द्वन्द्व की मनःस्थिति बार–बार प्रतिम्बित होती है। वह व्यैक्तिक नहीं अपितु

2 समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार, हरेराम नेका, पृ. 18.

3 हिन्दी ग़ज़ल : उद्‌भव और विकास, रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 267.

सामाजिक और राजनैतिक है। जिस आंतरिक वातावरण का बोध हमें आपातकाल के दौरान हुआ उसकी आहट दुष्यन्त ने 62में ही सुन ली थी –

पथ के इधर–उधर खड़े हुए वृक्ष नहीं बोलते

लता–गुल्म चुप

फूल–पत्ते खामोश

पाँवों से लिपटने की आतुरता[4]

दुष्यन्त ने हिन्दी ग़ज़ल को नयी टेक्नीक दी और यह टेक्नीक थी ग़ज़ल को पारम्परिक प्रेम और सौन्दर्य की परिधि से मुक्त करके उसे समसामयिक जीवन संदर्भों से जोड़ना। वास्तव में हिन्दी में नई ग़ज़ल अथवा हिन्दी ग़ज़ल का आन्दोलन खड़ा करने का श्रेय निर्विवाद रूप से दुष्यन्त कुमार को जाता है। लेकिन हिन्दी आलोचना का दुर्भाग्य देखिए उन्होंने कभी भी दुष्यन्त का महत्त्व नहीं जाना। चाहे डॉ. नामवर सिंह की 'कविता के नये प्रतिमान हो या जगदीश गुप्त का 'नयी कविता के प्रतिमान' हो दोनों से ग़ज़ल गायब है। हिन्दी ग़ज़ल को दुष्यन्त का एक योगदान यह है कि उन्होंने ग़ज़ल को कभी भी सस्ती वाहवाही लूटने का माध्यम नहीं माना। 'साये में धूप' की अधिकतर ग़ज़लें पाठक की जड़ चेतना को जोर का झटका देती है और वह सोचने के लिए विवश हो जाता है। दुष्यन्त के समय के अधिकतर ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हंगामा खड़ा करने आए थे लेकिन दुष्यन्त ने सभी का प्रतिवाद करते हुए कहा –

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,

मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

4 आवाजों के घेरे, दुष्यन्त कुमार, पृ. 51.

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,

हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।[5]

1950 में जब दुष्यन्त ने कविता लिखना शुरू किया तो उस समय राजनीतिक क्षेत्र में नेहरु का वर्चस्व था। भारत को एक लम्बे यातनादायक दौर से गुजरकर आजादी मिली थी। स्वतन्त्रता की पूर्वसंध्या पर नेहरु ने अपने भाषण में वायदों को पूरा करने के लिए दस वर्ष का समय मांगा। नेहरु के शब्दों में "मैं तब तक आराम से नहीं बैठ सकता जब तक कि इस देश के प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री और बच्चे को एक उचित व्यवहार और न्यूनतम जीवन स्तर की सुविधा प्राप्त नहीं हो जाती ... एक राष्ट्र को जाँचने के लिए पाँच–छह वर्ष की अवधि बहुत छोटी होती है। आप दस साल और इंजतार कीजिए और आप पाएंगे कि हमारी योजनाएँ इस देश का नजारा पूरी तरह ऐसे बदल देंगी कि दुनिया भौंचक्की रह जाएगी।"[6]

लेकिन सत्तर तक आते–आते स्थिति इसके उल्ट हो गई। कहाँ तो दुनियाँ भौंचक्की होने वाली थी और कहाँ पूरे देश में भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, बेइमानी और लूट का तंत्र फैला गया। ऐसे ही हालतों में दुष्यन्त को कहना पड़ा –

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए

कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए[7]

'साये के धूप' में संकलित अनेक ग़ज़लों में सपनों के टूटने की अनुगूँज साफ सुनाई देती है। दुष्यन्त की ग़ज़लों में 'मोहभंग' कोई साहित्यिक जुमला नहीं है अपितु स्वतन्त्रता के बाद की

---

5 साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ. 30.

6 आजादी के बाद का भारत, विपिनचन्द्र, पृ. 184.

7 साये के धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ. 13.

भारतीय जनता की बेबसी, लाचारी, हताशा, यातना और बेचैनी की तस्वीरें इन ग़ज़लों में दिखाई देती है।

'साये के धूप' संग्रह की ग़ज़लों की पृष्ठभूमि में आपातकाल है। इस संग्रह की अधिकतर ग़ज़लों में आपातकाल के सन्दर्भ बिखरे पड़े हैं। भारतीय राजनीति में आपातकाल एक काला अध्याय है। यह अध्याय सत्ता की निरंकुशता और लोकतांत्रिक संस्थाओं की मृत्यु से भरा पड़ा है। दुष्यन्त के संग्रह 'साये के धूप' में आपातकाल पानी की तरह बहता है। डॉ. केदारनाथ सिंह आपातकाल और दुष्यन्त की ग़ज़लों पर टिप्पणी करते हुए कहा है – ''मुझे यह लगता है कि उन्होंने ग़ज़ल में दो चीजें और दुष्यन्त ने जोड़ी जो गौरतलब है, पहला यह कि उन्होंने ग़ज़ल के स्वरूप को आपातकाल के आसपास की राजनीतिक पृष्ठभूमि का लगभग आइना बना दिया और उस तरह उसे एक स्पष्ट राजनीतिक आयाम दिया।''[8]

आपातकाल का सबसे ज्यादा प्रभाव अभिव्यक्ति के माध्यमों पर पड़ा। इन्दिरा ने सभी माध्यमों पर सेंसरशिप थोप दी। कविता अभिव्यक्ति का सबसे प्रखर माध्यम है। काव्य के सबसे सामाजिक काव्य रूप ग़ज़ल इस माहौल में सत्ता का विरोध करने के लिए और कारगर हो गई। दुष्यन्त कुमार का कवि हर आपात स्थिति में ग़ज़ल को मरने नहीं देना चाहिए था। दुष्यन्त सत्ता से जवाब चाहता है लेकिन प्रतिउत्तर में सत्ता सवाल करती है। लेकिन कवि की विवशता चुप न रहने की है। सत्ता को लेकर इतना मुखर कवि कोई दूसरा नहीं हुआ।

हमने सोचा था जवाब आएगा,
एक बेहूदा सवाल आया है।

---

8 समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार, हरेराम नेमा, पृ. 19.

ये जुबाँ हमसे सी नहीं जातीं,

जिन्दगी है कि जी नहीं जाती।[9]

दुष्यन्त की ग़ज़लों का जो सच है वह सत्तातंत्र के लिए हमेशा खतरा बनके मंडराता है। पुरी दुनियाँ में ऐसे बहुत कम कवि हुए हैं जिनसे सत्ताएँ डरती है। सत्ता का मूल चरित्र होता है किसी भी कीमत पर स्थायी बने रहकर जनता का शोषण करना। सत्ता स्थायित्व चाहती है लेकिन कविता इस स्थायित्व का विरोध करती है। कवि परिवर्तन चाहता है। आज समूचे देश में जो लाशों की राजनीति हो रही है उसके बारे में दुष्यन्त कुमार ने बहुत पहले कहा था।

– कई फ़ाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में

वो सब कहते है अब, ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा।[10]

सत्ता अन्याय और अत्याचार को छुपाना चाहती है लेकिन कवि उसे चिल्ला–चिल्ला कर दुनियाँ को बताना चाहता है। यहीं से सत्ता और कविता में टकराहट होती है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान जनता के पैसे को जिस प्रकार से हजम किया गया उसको लेकर दुष्यन्त ने प्रतीकात्मक शैली में एक ग़ज़ल लिखी। कवि को पता है भ्रष्टाचार की गंगोत्री कहाँ है –

यहाँ तक आते–आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,

मुझे मालूम हैं पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।[11]

दुष्यन्त की ग़ज़ले स्वतन्त्र भारत की राजनीति में उभरी अवसरवादिता, मूल्यहीनता, बर्बरता, हिंसा और छल प्रपंच की मुद्राओं पर तीखी और तल्ख टिप्पणी हैं। नयी कविता ने बिंबों, रूपकों,

9 वही, साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ. 45.
10 वही, साये में धूप, पृ. 15.
11 वही, साये में धूप, दुष्यन्त, पृ. 15.

उपमाओं और फैंटेसी का घना कोहरा पाठकों के सामने निर्मित किया। दुष्यन्त की कविता ने उस कोहरे को बेधने का कार्य किया। दुष्यन्त की ग़ज़लों का मिजाज गहरी चोट और कचोट का है। ये ग़ज़लें अपने पाठक को अपना प्रभावमण्डल में लेकर उसे सोचने के लिए विवश कर देती है। दुष्यन्त की ग़ज़लें आपातकाल की सबसे निर्मम आलोचना हैं। जहाँ तक दुष्यन्त की ग़ज़लों की भाषा और शिल्प का सवाल है उसमें भी वे नयी कविता की अपेक्षा अधिक लोकतांत्रिक और खुली हुई हैं। दुष्यन्त ने उर्दू, अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग इस तरह किया है कि वे मानों हिन्दी के सगे हों। संगीत लय, तुक और अलंकरण की दृष्टि से ये ग़ज़लें सुगठित एवं ठोस हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल : शिल्प और संवेदना, डॉ. सादिका असलम, प्रकाशन संस्थान दरियागंज, सं. 2007.

2. समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार एक अध्ययन, लेखक हरेराम नेमा 'समीप', भावना प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2017.

3. हिन्दी ग़ज़ल : उद्भव और विकास, रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं. 2010.

4. आवाजों के घेरे – दुष्यन्त कुमार।

5. साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं. 2014.

6. आजादी के बाद का भारत, विपिन चन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं. 2010.